सो किछु करि जितु मैलु न लागै ॥

भाग – 2

हमारा मन अति चंचल होने के कारण इसमें हर पल कोई न कोई कल्पना उत्पन्न होती रहती है । इन ख्यालों पर हमारे वातावरण की **'संगत'** तथा **अंतर-मन की मलिन 'रंगत'** का प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार **मन की 'मलिनता'** का सिलसिला लगातार तथा अटूट चलता रहता है, जो हमारे –

ख्यालों
विचारों
कर्मों
स्वभाव
आचरण

द्वारा सहज-स्वभाव ही हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकट होता रहता है।

इसी मलिन अज्ञानता तथा भ्रम को ही हम –

सही
उत्तम
विशेष
सत्य
उचित

मानते हैं तथा अनजाने ही मलिन-जीवन के 'प्रवाह' में बहते जा रहें हैं।

इस प्रकार हमारा आपस में टकराव होता रहता है, जिस कारण ईर्ष्या-द्वेष, तअस्सुब, वैर, विरोध बढ़ता जाता है तथा समस्त संसार में लड़ाई-झगड़ों की खिचड़ी पकती रहती है ।

दूसरे शब्दों में इस अन्दरूनी मानसिक ग्लानि का ज़हर (poison of corruption and degeneration) सम्पूर्ण मानवता की रग-रग में धंस-बस-रस कर समा चुका

है तथा छूत की बीमारी की भांति (epidemic infection) सम्पूर्ण विश्व में फैल रहा है, जिस कारण विश्व में –

अशांति
अविश्वास
खींचतान
स्वार्थ
छीना-झपटी
लूट-मार
ठग्गी
धक्के-शाही
भ्रष्टाचार
बेईमानी
मिलावट
जुल्म

का बोलबाला है।

दुःख और अफसोस की बात है कि इतने धर्म, कर्म, पाठ-पूजा, सभा-सुसाइटियों तथा दार्शनिकता भरे **प्रचार के बावजूद** मनुष्य का यह दयनीय पतन हो रहा है।

इस मानसिक ग्लानि की 'भड़ास' या दुर्गन्ध हमारे –

मन
चित्त
बुद्धि
अन्तःकरण
मज़हबों
धार्मिक स्थानों
सम्प्रदायों
देशों
नौकरशाही
महकमों
सरकारों

में **'समा'** गई है, जिसका प्रमाण हमारे –

जीवन के प्रत्येक पक्ष में
प्रत्येक कार्य में
प्रत्येक बात-चीत में
व्यापार में
व्यवहार में
सम्बंधों में
मित्रता में
परमार्थ में
सरकारों में
दफ्तरों में
विद्यक संस्थाओं में
धार्मिक स्थानों में
सभा-समाज में

प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है ।

गुरबाणी में ईश्वर तथा उसके प्रकाश-रूप बाणी, नाम तथा भक्तों, महापुरूषों, की **'निर्मलता'** को यूँ दर्शाया गया है –

ब्रहम गिआनी निरमल ते निरमला ।। (पृ. 272)

निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी ।।
घटि घटि सुनी स्रवन बरवानी ।।
पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत ।।
नामु जपै नानक मनि प्रीति ।। (पृ. 279)

निरमल सोभा अंम्रित ता की बानी ।। (पृ. 296)

ऐसे आत्मिक मंडल के पवित्र तथा 'निर्मल प्रकाश' की हजूरी में, मिथ्या मायकी मंडल तथा त्रि-गुणी प्रकृति तथा प्रवृत्ति **'धुंधली'** तथा **'मलिन' प्रतीत होती है।**

यदि दूध जैसा सफेद वस्त्र या कागज़ हाथ लगाने से मैला हो सकता है, तो हमारे **ज्योति स्वरूप निर्मल मन पर तुच्छ एवम् मलिन विचारों, तुच्छ कर्मों तथा दूषित वातावरण का अक्स पड़ना स्वाभाविक है ।**

अमृतमय दूध में यदि **एक भी छींट** खटट्रास की पड़ जाए तो दूध **फट जाता है** तथा उसकी निर्मलता **कम** हो जाती है ।

इसी प्रकार आत्मिक ज्योति का प्रकाश अति निर्मल तथा पवित्र होता है, परन्तु यदि मायकी विचार या कल्पना मन में उत्पन्न हों, तो निर्मल प्रकाश पर **मलिन ख्यालों का 'प्रतिबिम्ब पड़ जाता है ।** इस अति सूक्ष्म स्वैपना (भावनाओं) के निर्मल मंडल में **सूक्ष्म से सूक्ष्म** तुच्छ विचारों की **'क्षणिक छुह' भी मन को मैला कर देती है ।**

जेता मोहु परीति सुआद ।।
सभा कालख दागा दाग ।। (पृ. 662)

संसारु रोगी नामु दारू मैलु लागै सच बिना ।। (पृ. 687)

नानक विणु नावै आलूदिआ जिती होरु खिआलु ।। (पृ. 1097)

दूध और खटट्रास की छींट तो स्थूल मायकी मंडल के दृष्टांत हैं, परन्तु 'आत्म-प्रकाश' एवम् **'ख्याल' अति सूक्ष्म तथा अदृश्य 'तत्' हैं – जो केवल महसूस या अनुभव ही किये जा सकते हैं ।**

हम बाहरी दृश्टमान **मैल से बचने के लिए अनेक उपाय करते हैं,** परन्तु अंदरूनी सूक्ष्म **मानसिक मैल से बचने का कोई भी उपाय या संकोच नहीं करते ।** अपितु अपनी तुच्छ रूचियों वाले ख्यालों द्वारा प्रति क्षण, पल-पल, सदा अपने **मन को मैला करते रहते हैं ।** इस प्रकार हम अनजाने ही, अपने मन को **जन्म-जन्मांतरों से मैल लगाते आए हैं ।**

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ।। (पृ. 651)

हमारी कितनी अज्ञानता है कि अन्तर-आत्मा में **'ज्योति' की अति निर्मलता को** अपनी तुच्छ रुचियों वाले **दूषित मायकी ख्यालों द्वारा,** हम पल-पल, **सहज-स्वभाव मैला करते जाते हैं** तथा इस दीर्घ लापरवाही का हमें –

ज्ञान ही नहीं ।
अहसास ही नहीं ।
अफसोस ही नहीं ।

पश्चाताप ही नहीं ।

संकोच तो क्या करना था !!

गुरबाणी तथा अन्य अनेक धर्म ग्रंथ आदि काल से ही मनुष्य को इस **'मानसिक-मैल' के प्रति ताड़ना करते व उपदेश देते आए हैं ।** परन्तु माया के 'नशे' में हम इतने मदहोश और **ढीठ हो गये हैं** कि मायकी मलिनता की हमें **'सूझ' ही नहीं आई !** अपितु ऐसी मलिनता में विचरण करने तथा गलतान होने में ही बुद्धिमानी समझते हैं तथा इस मलिन जीवन के क्षेत्र में एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर मुकाबला (competition) करते हैं तथा अपना अमूल्य जीवन तबाह कर रहे हैं ।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. 133)

हमारी वृत्ति – अपने शरीर, कपड़े, घर तथा **आस-पास की सफाई रखने तथा सजावट के साधनों में लगी रहती है ।** परन्तु, हमें अपने सूक्ष्म **अन्तर-मन की सफाई का कोई ख्याल नहीं आता,** उद्यम तो क्या करना था । अत्यधिक मंहगे साबुन, क्रीम, पाउडर, आदि द्वारा हम अपने शरीर को साफ रखने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु फिर भी यह शरीर मैला तथा गंदा होता रहता है । हम अमृतमयी खुराक खाते हैं, जो कुछ घंटों उपरान्त ही गन्दगी बन जाती है ।

अंनु देवता पाणी देवता बैसतरु देवता लूणु पंजवा पाइआ घिरतु ।।
ता होआ पाकु पवितु ।।
पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईआ तितु ।। (पृ. 473)

हम महंगे से महंगे वस्त्रों द्वारा इस **शरीर को सजाते हैं ।** परन्तु शरीर **से लग कर** कुछ घन्टों में ही **यह वस्त्र मैले हो जाते हैं ।**

यदि स्थूल वस्तुएं हमारे मैले 'तन' की छुह से शीघ्र ही मैली हो सकती है, तो हमारा **अति सूक्ष्म मन** भी हमारी भीतरी सूक्ष्म मानसिक 'रंगत' या **मैल की क्षणिक 'छुह' से, मलिन हो सकता है ।**

इसी प्रकार तथाकथित **उत्तम ख्याल** तथा **धार्मिक भावनाएं** भी, **अन्तःकरण की गन्दी 'भड़ास' द्वारा मलिन हो जाती हैं** तथा हम अपने अहम् में ही भद्र-पुरुष, नेक, सच्चे तथा 'धर्मी' बन बैठते हैं तथा हमारी **'अहम्' में की गई साधना व्यर्थ जाती है ।**

बहु बिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ ।। (पृ. 39)

नाम संगि मनि प्रीति न लावै ।।
कोटि करम करतो नरकि जावै ।। (पृ. 240)

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार ।।
प्रीति नही जउ नाम सिउ ततु एऊ करम बिकार ।। (पृ. 252)

अंतरि लोभु मनि मैलै मलु लाए ।।
मैले करम करे दुखु पाए ।।
कूड़ो कूड़ु करे वापारा कूड़ु बोलि दुखु पाइदा ।। (पृ. 1062)

कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग
श्री भगवान को भेदु ना पाइओ ।। (सवैये पा. 10)

इस प्रकार हमारे भले-भद्र होने का बाहरी **'धार्मिक-आवरण'** या **'दिखावा',** हमारी आत्मिक उन्नति के मार्ग में **रुकावट का कारण** बन जाता है, जिसके द्वारा –

हमारा **अहम् और सुदृढ़** होता है ।
अहम् से मन **और अधिक मैला** होता जाता है ।
धार्मिक बंधनों में **फंस** जाते हैं ।
लोगों से तथा अपने **'आप' से धोखा** करते हैं ।
आत्मिक उन्नति में 'बाधा' पड़ जाती है ।
इस **प्रकार अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ खो बैठते हैं ।**

यद्यपि हम इस **अंतर-मन की मैल** के विषय में नित्य-प्रति गुरबाणी के पाठ, कथा, कीरतन द्वारा पढ़ते, सुनते और सुनाते हैं, परन्तु **'स्वयं' यह बात 'मानने' या स्वीकार करने को तैयार ही नहीं कि हमारा मन भी मैला है !!!**

जब हमें अपने **'रोग' का ही ज्ञान नहीं, तो इसके उपचार का** –

प्रश्न ही नहीं उठता !
आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती !
यत्न तो क्या करना था !

जब हम 'मैल' के सम्बंध में गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियां पढ़ते या सुनते हैं, तो हमें निश्चय होता है कि हम तो निर्मल तथा पाक-पवित्र हैं । इसलिए यह पंक्तियां हम पर लागू नहीं होती, शायद किन्हीं अन्य मैले जीवों के लिए यह बाणी रची गई होगी । इस प्रकार हम अपना जीवन, अपनी अज्ञानतावश दुखदायी बना रहे हैं तथा स्वयं से धोखा कर रहे हैं ।

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ ।। (पृ. 39)

चहु जुगि मैले मलु भरे जिन मुखि नामु न होइ ।। (पृ. 57)

मनि मैलै सभु किछु मैला तनि धोतै मनु हछा न होइ ।। (पृ. 558)

हंउमै माया मैलु है माया मैलु भरीजै राम ।। (पृ. 570)

हरि बिनु सभु किछु मैला संतहु किआ हउ पूज चड़ाई ।। (पृ. 910)

मैला हरि के नाम बिनु जीउ ।। (पृ. 1224)

नाम बिना सभु जगु है मैला दूजै भरमि पति खोई ।। (पृ. 1234)

जिस प्रकार जुकाम के कारण हमारी सूंघने की शक्ति नहीं रहती । इसी प्रकार मानसिक ग्लानि की 'भड़ास' के कारण हमारी 'निर्णय शक्ति' की कसौटी भी क्षीण हो जाती है । जिस के कारण अति सूक्ष्म आत्मिक 'पवित्रता' तथा निर्मलता का महत्त्व, विशेषता तथा कद्र-कीमत नहीं रहती । इस प्रकार अंतर-आत्मिक 'पवित्रता' तथा निर्मलता से अनजान तथा कठोर हो कर, मायकी भ्रम-भुलाव की अज्ञानता में गलतान होकर, मायकी मलिनता में पलच-पलच कर जीवन व्यतीत करने में 'संतुष्ट' ही नहीं – अपितु भद्र-पुरुष बने फिरते हैं !!

यदि किसी जिज्ञासु को सत्संग द्वारा ज्ञान हो भी जाए, तो वह अपने मन की मैल उतारने के लिए, ऊट-पटांग, कूड़-क्रिया तथा गलत साधनों का प्रयोग करता है। इस प्रकार कई जिज्ञासु भ्रांतियों में फंस कर अपना जीवन व्यर्थ गंवा देते हैं ।

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ ।।

मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ ।।
बहु बिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ ।।
पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ ।।
मन मेरे गुर सरणि आवै ता निरमलु होइ ।।
मनमुख हरि हरि करि थके मैलु न सकी धोइ ।। (पृ. 39)

पुंन दान अनेक नावण किउ अंतर मलु धोवै ।। (पृ. 243)

मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए ।।
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ।। (पृ. 642)

नावहि धोवहि पूजहि सैला ।।
बिनु हरि राते मैलो मैला ।। (पृ. 904)

काइआ कुसुध हउमै मलु लाई ।।
जे सउ धोवहि ता मैलु न जाई ।। (पृ. 1045)

हउमै अंतरि मैलु है सबदि न काढहि धोइ ।।
नानक बिनु नावै मैलिआ मुए जनमु पदारथु खोइ ।। (पृ. 1415)

सत्संग में विचरण करते हुए या पाठ, कीरतन सुनते हुए, यदि कभी हमारा मन द्रवित होकर अपने मन की मैल को क्षण-भर के लिए अनुभव करता भी है तो संगत से बाहर आते ही यह सूक्ष्म भावना आलोप हो जाती है और हम फिर अपने जीवन-वेग की पुरानी दृढ़ हुई चाल (routine) में बहने लगते हैं । इसका कारण यह है कि यह मानसिक मैल, हमारे अन्तःकरण में धँस-बस-रस चुकी है, जिसकी गन्दी 'भड़ास' द्वारा, हमारे मन की दिखावटी नाममात्र भावनाएं शीघ्र ही 'तितर-बितर' हो जाती हैं!!

बाहरी मैल दृष्टमान है तथा इसे उतारने का या इससे बचने का प्रबंध शीघ्र तथा सरल हो सकता है । परन्तु हमारी **अंदरूनी मानसिक मैल** सूक्ष्म तथा अदृष्य होने के कारण इस ग्लानि का हमें –

अहसास ही नहीं
ख्याल ही नहीं
ज्ञान ही नहीं
चिन्ता ही नहीं

तथा इसके –

मूल कारण
परिणाम
बचाव
इलाज

के विषय में –

जानने
समझने
विचारने
सोचने
बूझने
खोजने

की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती तथा इस 'ग्लानि' के लिए कोई यत्न-प्रयत्न, साधन अथवा उद्यम तो क्या करना था !

हमारा मन अति चंचल तथा पिछलग्गू है ।

'जिनी लाई गलीं उसे नाल उठ चली' (गंगा गए तो गंगादास, जमना गए तो जमनादास) की कहावत अनुसार, हमारा मन शीघ्र ही बाहरी असर ग्रहण करके 'ताता-सीरा' हो जाता है ।

हम जन्म-जन्मांतरों से अनगिनत बाहरी प्रभाव ग्रहण करते आए हैं । उन प्रभावी ख्यालों को **दोहरा कर या 'सोच-सोच'** (repeat) कर, इन मलिन ख्यालों की रंगत या मैल, हमारे अन्तःकरण के स्टोर (sub-conscious mind) में जमा होती आई है । जब कोई बाहरी उकसाहट (exciting cause) मिलती है, तो अन्तःकरण (inner computer) की गहराईयों में से, पुरानी मानसिक ग्लानि की भड़ास स्वतः उभर आती है । **जिसके प्रभाव अधीन विवश होकर, हम अनेक तुच्छ रुचियों के शिकार हो जाते हैं** तथा जान-बूझ कर या अनजाने ही बुरे कर्म या पाप कर बैठते हैं । इस प्रकार हमारा मन और मैला होता जाता है तथा यह मलिनता का चक्र (vicious circle) कई जन्मों से चलता आया है और चलता रहेगा ।

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ।। (पृ. 651)

किसी बरतन में स्वच्छ जल डालकर, उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की रंग – बिरंगी, मीठी, कड़वी, कसैली वस्तुओं के कण मिलाते जाएं, तो उस पानी का घोल (solution) बनता जाएगा । प्रत्येक कण के उपरांत, उस **'घोल' की रंगत,** दुर्गन्ध-सुगंध, स्वाद आदि (composition) पल-पल बदलता जाएगा । यदि उस घोल को नए बरतन में डाल दें, तब भी नए बरतन में वही पुराना 'घोल' ही होगा, केवल बरतन ही बदला जाता है ।

ठीक इसी प्रकार हमारे मन पर जो ख्यालों या कर्मों का अक्स (reflection) पड़ता है – उसी के अनुसार ही हमारे मन की रंगत, मैल, ग्लानि या निर्मलता, क्षण प्रतिक्षण बदलती रहती है तथा हमारे **मन का 'घोल'** गाढ़ा (dense) होता जाता है ।

मन के इस गाढ़े घोल (dense solution) को ही **'स्वभाव'** या आचरण (character) कहा जाता है ।

मन का यह मिश्रण या घोल ही हमारा अन्तःकरण कहलाता है – जिसके अनुसार हम सोचते, विचार करते तथा कर्म करते हैं ।

इसी अन्तःकरण की रंगत अनुसार ही हमारे पूर्व कर्म या भाग्य (fate and destiny) बनते हैं ।

दिनु राति कमाइअड़ो सो आइओ माथै ।। (पृ. 461)

इसी **'पूर्व-कर्म'** या **धुर-भाग्य'** अनुसार ही हमें दुःख-सुख भोगने पड़ते हैं ।

मृत्योपरांत हमें नया शरीर मिलता है, परन्तु हमारे अन्दर वही पुराना 'अन्तःकरण' प्रवेश कर जाता है । केवल 'पात्र' या शरीर ही बदलता है तथा हम पुराने अन्तःकरण अनुसार ही 'उल्टा-चरखा' चलाना शुरू कर देते हैं ।

हमारी अज्ञानता या लापरवाही इतनी बढ़ गई है कि हम स्वयं इस 'ग्लानि' का ही रूप (corruption personified) हो गए हैं । हमारे प्रत्येक ख्याल, कर्म तथा जीवन के हर पक्ष में इस ग्लानि का ही बोल-बाला तथा व्यवहार है, जो सरे-आम, प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है । इस मानसिक ग्लानि से 'संकोच' या 'झिझकने' का हमारे अन्दर ज़मीर (consciousness) ही नहीं ।

इस ग्लानि से लथ-पथ हुए हमारे मन, बुद्धि तथा अन्तःकरण द्वारा –

निर्मलता	और	मैल
सच	और	झूठ
उचित	और	अनुचित
सदाचार	और	भ्रष्टाचार

में 'निर्णय' करने में हम असमर्थ हो गए हैं ।

दूसरे शब्दों में हमारी मलिन बुद्धि में 'निर्णय शक्ति' या विवेक-बुद्धि (discrimination) की शक्ति ही नहीं रही ।

दैवीय गुणों तथा असुरी अवगुणों के 'मिश्रण' (solution) के मानसिक भ्रम-भांतियों में फंसे हुए हैं । इस प्रकार हम –

झूठ
बेईमानी
स्वार्थ
नजाइज़
कालाबाजारी (blackmarketing)

को उचित सिद्ध करने का सिर तोड़ प्रयत्न करते हैं तथा फिर भी 'भद्र-पुरुष', 'मुखिया', 'सदाचारी' तथा धार्मिक होने का दावा करते हैं और अपनी 'सफेद-पोशी' कायम रखने के लिए ढोंग करते हैं ।

पीछे बताया जा चुका है कि मनुष्य के पूर्व संस्कारों तथा इस जन्म के ख्यालों और कर्मों के अनुसार ही उसका स्वभाव तथा आचरण बनता है, जो प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न-भिन्न 'रंगत' वाला होता है ।

इन्हीं गहरे संस्कारों और आचरण के प्रभावाधीन हमारे ख्याल तथा कर्मों की 'रंगत' या भड़ास बनती है ।

इस मन की 'रंगत' अनुसार हमारी 'निर्णय शक्ति' बनती है ।

हमारी निगाह तो एक होती है, परन्तु चश्में की रंगत अनुसार हमें प्रत्येक वस्तु 'रंगीन' दिखाई देती है ।

इसी प्रकार हमारी 'आत्म-ज्योति' का प्रकाश तो एक ही है, परन्तु इस ज्योति पर **मन के 'रंगीन चश्में'** अनुसार हमें प्रत्येक वस्तु 'रंगीन' दिखाई देती है ।

यह **मन का 'रंगीन चश्मा'** ही हमारी अपनी-अपनी **'निर्णय-शक्ति'** है। इसी रंगीन 'निर्णय-शक्ति' की कसौटी अनुसार ही हम **प्रत्येक बात को** –

सोचते हैं
परखते हैं
विचार करते हैं
गौर करते हैं
फैसला करते हैं ।

क्योंकि यह 'निर्णय-शक्ति' की कसौटी – हमारी रंगीन और मलिन बुद्धि तथा अन्तःकरण पर आधारित है ।

इसलिए हमारे –

चिंतन
ख्याल
कल्पना
मनोभाव
भावनाएं

निश्चय
श्रद्धा
फैसले
कर्म
धर्म
जीवन-दिशा
जीवन

भी रंगीन, मलिन, अपूर्ण तथा गलत हो सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की 'निर्णय-शक्ति' की कसौटी **भिन्न-भिन्न** होने के कारण हमारे आपस में –

ख्यालों
विचारों
व्यवहार
व्यापार
धर्म
धार्मिक निश्चय
धार्मिक कर्म-क्रिया
धार्मिक मर्यादा
धार्मिक पाठ-पूजा

में अत्यंत 'मत-भेद' तथा भिन्न-भेद हैं। जिस कारण **'धर्म' के नाम पर** तअस्सुब, नफरत, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़े हो रहे हैं तथा असहनीय और अकथनीय पाप व जुल्म किये जा रहे हैं। यद्यपि हम सब का –

'ईश्वर' एक है।
'ज्योति' एक है।
'ज्योति-प्रकाश' एक है।
'आत्मिक-केंद्र' एक है।
'आत्म-मार्ग' एक है।
'जीवन-रौं' एक है।
'जीवन' एक है।

एकु पिता एकस के हम बारिक तू मेरा गुर हाई ।। (पृ. 611)

माटी एक सगल संसारा ।।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा ।। (पृ. 1128)

सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई ।। (पृ. 1350)

करता करीम सोई राजक रहीम ओही
दूसरो न भेद कोई भूल भरम मानबो ।।
एक ही सेव सभ ही को गुरदेव एक
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ।। (अ. ऊ. पा. 10)

'निर्णय-शक्ति' की कसौटी प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी मानसिक 'रंगत अनुसार' स्वयं बनाई हुई है । परन्तु हमें यह सूझ ही नहीं कि जिस कसौटी पर हम अपने-आप को तथा अन्य लोगों को परखते हैं – वह अपने मलिन मन की रंगत अनुसार स्वयं ही बनाई हुई है जो परिवर्तनशील है तथा अधूरी और गलत हो सकती है ।

यद्यपि हम अपनी आन्तरिक मानसिक ग्लानि को –

जाने, या न,
अनुभव करें, या न,
माने, या न,
स्वीकार करें, या न,

परन्तु, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक हमारे ख्यालों, विचारों, हृदय तथा अन्तःकरण में –

द्वैत भाव
ईर्ष्या-द्वेष
नफ़रत
तअस्सुब
वैर-विरोध
गिले-शिकवे
जलन
कुढ़न
बदले की भावना

काम
क्रोध
लोभ
मोह
अहंकार

की तनिक सी भी 'झलक' या 'रंगत' है तब तक हमारा मन 'मैला' ही है ! क्योंकि यह तुच्छ असुरी अवगुण ही हमारे मन की **मलिनता के प्रतीक तथा प्रकटाव हैं ।**

इन तुच्छ भावनाओं के संकल्प-विकल्प की 'छुह' से ही मन मलिन हो जाता है । यही हमारे मन की मलिनता के प्रत्यक्ष चिन्ह (symptoms) हैं ।

हमारे संकल्प-विकल्प या ख्याल तीन प्रकार के होते हैं –

1. उत्तम (sublime) – जिनके द्वारा मन साफ होता है ।
2. मध्यम (neutral) – निर्दोष, प्रभावहीन ।
3. निम्न (तुच्छ) – जिनके द्वारा मन मैला होता है ।

अब हमने अपने-अपने हृदय में झांक कर, ईमानदारी से परख करनी है, कि हमारे मन में किस प्रकार के ख्याल उत्पन्न होते हैं तथा उन का हमारे मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

इस निर्णय के बिना हमारे मन का सुधार नहीं हो सकता तथा सही 'जीवन-उद्देश्य' का 'चुनाव' नहीं हो सकता ।

जीवन-उद्देश्य का 'चुनाव' ही हमारी मूल आवश्यकता है और मुख्य कर्तव्य है।

इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ।।
मनु खोजत नामु नउ निधि पाई ।। (पृ. 1128)

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी माहि ।। (पृ. 727)

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ ।। (पृ. 342)

शारीरिक 'कोढ़' या 'तपैदिक' जैसे भयंकर रोग शरीर को घुन की भांति, धीरे-धीरे तबाह करते हैं ।

इन शारीरिक रोगों से तो मृत्योपरांत छुटकारा हो जाता है, परन्तु हमारे 'मानसिक रोग' – वैर-विरोध, ईर्ष्या, जलन, बदला, घृणा, एलरजी (allergy) तो

मृत्योपरांत भी, 'जीव' के साथ ही चिपके रहते हैं और अगले जन्मों में और अधिक दीर्घ तथा भयंकर (serious) बन जाते हैं।

इस प्रकार जीवन के दीर्घ तथा भंयकर **मानसिक रोगों का चक्र अथवा सिलसिला** (vicious circle) **चलता रहता है, जिनके भंयकर परिणाम** (serious consequences) से हम बिल्कुल –

अनजान
बेखबर
बे-परवाह
बेफिक्र
लापरवाह

होकर जीवन नारकीय बना रहें हैं।

इतना ही बस नहीं, **'छूत' के शारीरिक रोगों की भांति** – हमारे मानसिक रोग भी, **मानसिक किरणों द्वारा सारे 'वायुमंडल' में फैल कर, ब्रह्मांड के अन्य मनों पर भी प्रभाव डालते हैं।**

आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे **'मानसिक तपैदिकग्रस्त'** अत्यंत दुःखदायी नारकीय जीवन को भोगते, **'हाय-तौबा'** और **विलाप करते हुए भी**, इनके सही उपचार की ओर हम **कतई ध्यान नहीं देते।** यद्यपि सभी धर्म ग्रंथों में, इन मानसिक रोगों के **सरल तथा 'कारगर' उपचार बताए गये हैं।**

हमारे मन में जो भी विचार या ख्याल उत्पन्न होते हैं – उन की 'छुह' द्वारा, हमारे मन पर अच्छा या बुरा असर पड़ता है तथा **'रंगत'** चढ़ जाती है। **यह रंगत या मैल** उन विचारों को **दोहराने से 'गाढ़ी'** होती जाती है तथा अभ्यास या बार-बार याद करने (practice) से, **'रुचि'** बन जाती है। इन तुच्छ रुचियों से पीछा छुड़ाना अत्यंत कठिन है। यह रुचियां कुछ समय उपरांत हमारे अन्तःकरण में धँस-बस के 'रस' जाती हैं। इन तुच्छ रुचियों में से जो **घृणा की 'भड़ास'** निकलती है उसे **'ऐलरजी'** (allergy) कहा जाता है। यदि हमें किसी से ऐसी नफरत या **'ऐलरजी'** हो तो स्पष्ट है कि हमारा **मन अत्यंत मलिन और कठोर हो चुका है,** केवल उस प्राणी की **'याद'** आते ही हमारे **'तन-बदन' में आग लग जाती है** तथा हमारा मन जल-भुन कर और **कठोर** होता जाता है। इस प्रकार हमारे पूर्व जन्मों के अच्छे कर्म, धर्म तथा **भक्ति-भाव भी नष्ट हो जाते हैं।**

तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूरु ।।
अउगण फिरि लागू भए कूरि वजावै तूरु ।। (पृ. 19)

मन के 'उत्तम' या मलिन होने के कुछ **लक्षण** प्रस्तुत किए जाते हैं –

'उत्तम मन'	**'मलिन मन'**
सत्संग का प्यार	कुसंगति की प्रेरणा
नाम-सिमरन	मोह-माया का अभ्यास
गुरबाणी से प्रेम	सिनेमा, टी.वी. तथा नावलों में खचित
सेवा करने का चाव	सेवा करवाने की रुचि
आत्म-ज्ञान	मायकी भ्रम-भ्रांतियां
एकता-' '	द्वैत भाव
ईश्वर की याद	माया में गलतान
ईश्वर के प्रति श्रद्धा भावना	ईश्वर के अस्तित्व पर शक या 'श्रद्धाहीनता'
ईश्वरीय हुकुम	अपनी चतुराई
ईश्वरीय रज़ा	अपनी उक्तियां-युक्तियां
प्यार	घृणा
मेल-मिलाप	वैर विरोध
'सगल संग बण आई'	'तात-पराई'
परोपकारी	सवार्थी
दया	निर्दयी
क्षमा	बदला
नम्रता	अहंकार
संतोष	तृष्णा
अचिंत	चिंता-चिता
निरदावै	दावै दाझन
अलिप्त	मोह
'हथहु दे के भला मनावै'	छीनकर, लेकर भला मनाना
सच का व्यवहार	झूठ का प्रचलन
आत्मिक जीवन	मायकी जीवन
गुरमुख	मनमुख

(क्रमश)